NJESR/June2025/Volume-7/Issue-6 E-ISSN-2582-5836
DOI-10.53571/NJESR.2025.7.6.10-14

हिन्दी दलित आलोचना और डॉ. माता प्रसाद

डॉ. साक्षी शालिनी
सहायक प्राध्यापक
विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

(Received-20May2025/Revised-16June2025/Accepted-25 June2025/Published-30 June-2025)

सारांश

दलित साहित्य का मुख्य सरोकार आत्मकथा से है। वस्तुतः अपनी अनभूतियों को शब्दों में पिरोकर पाठकों तक पहुँचाने में आत्मकथा ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा के रूप में चर्चित रही है। यही कारण है कि दलित साहित्यकारों ने आत्मकथा को विशेष रूप से पुष्पित–पल्लवित किया है परन्तु अनेक साहित्यकारों ने कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, यात्रावृतान्त जैसी अनेक विधाओं ने अपनी योग्यता को सिद्ध किया है। आलोचना एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें दलित साहित्यकारों की उपस्थिति नगण्य रही है। लेकिन विगत कुछ वर्षों से अनेक दलित साहित्यकारों ने आलोचना पर भी अपना ध्यान आकर्षण किया है तथा दलित साहित्यकारों की रचनाओं को आधार बनाकर आलोचना प्रारम्भ किया है। इस प्रकार अब दलित साहित्य में आलोचना का विकास स्वतंत्र रूप से हो चुका है। यह शोध आलेख उसी दिशा में किये गये कार्यों को उल्लेखित करता है।

बीज शब्द : पिरोकर, उच्छृंखल, अनुशासित, क्रिटिसिज्म, तत्वान्वेषण, लोकमंगल, साधारणीकरण, लोकग्राह्यता, लोकाभिमुखी इत्यादि।

परिचय

‘आलोचना’ ‘लोच्’ धातु से बना है– आ+लोच्+अन+आ– आलोचना। लोच् का अर्थ है देखना। इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या अथवा उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। नित्य व्यावहारिक जीवन में किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा कार्यकलाप की समीक्षा में हमारी सहज प्रवृति होती हैं। किन्तु संस्कारों, चिंतन क्षमता एवं सामाजिक अवधारणा प्रभृति अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के परिणामस्वरूप हमारी प्रतिक्रियाओं में प्रायः अंतर रहता है। इसी प्रकार साहित्य की आलोचना भी प्रतिक्रियाओं की देन है, किंतु ये प्रतिक्रियाएँ उच्छृंखल न होकर एक प्रकार के वैज्ञानिक संयम से अनुशासित रहती है। ‘आलोचना’ के लिए ‘समीक्षा’ शब्द भी प्रयुक्त होता है।[1]

साहित्य यदि जीवन की व्याख्या है तो आलोचना साहित्य की व्याख्या और उसका मूल्यांकन है। यह भी धारणा है कि आलोचना से कृति ही नहीं, जीवन को भी समझने में मदद मिलती है। आलोचना का संसार तीन चीजों के मेल से बनता है– (1) साहित्य सिद्धान्त (2) व्यावहारिक आलोचना और (3) साहित्येतिहास या सांस्कृतिक इतिहास।

मुख्य भाग/विमर्श

हिन्दी में आलोचना शब्द अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' का पर्याय है, जिसका अर्थ है– मूल्यांकन या निर्णय करना। साहित्य की सवोत्तम बातों को जानना और समाज को उनका ज्ञान करना आलोचना का उद्देश्य माना जाता है। इसका उद्देश्य यह खोज निकालना है कि कवि या लेखक में मनुष्य के हृदय के किस रूप ने अपना सौंदर्य बिखेरा है।[2]

अलोचना एक प्रकार से काव्य–शास्त्र है। काव्य–शास्त्र को यहाँ व्यापक अर्थ में लेना होगा। काव्य का व्यापक अर्थ सृजन है, फिर चाहे वह कविता हो, आख्यान हो, नाटक हो या निबन्ध। आलोचना इस सब विधाओं का तत्त्वान्वेषण करती है और एक स्तर तक जाकर हर विधा के लिए उसकी उत्कृष्टता के कतिपय सिद्धान्त या मानक रच देती है। यदि आचार्य शुक्ल 'साधारणीकरण' या 'लोकमंगल' जैसे शब्दों का उपयोग करे हैं, तो स्पष्ट है कि सृजन का लोकाभिमुखी और लोक–ग्राह्य होना आवश्यक है। यही लोकग्राह्यता उसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है, जो हम कबीर और तुलसी दोनों में पाते हैं। आलोचना की बीजभूमि तो सृजन ही है और सृजन् अपनी समस्त मानवीय, सामाजिक और कलात्मक प्रेरणाएँ अपने ही पर्यावरण से लेता है। पर्यावरण में मनुष्य और प्रकृति तो विराट रूप से उपस्थित हैं लेकिन मनुष्य और प्रकृति अनेक छवियाँ अनेक प्रतीक और बिम्ब भी रचते हैं।[3]

समकालीन परिदृश्य की विभावनाओं को दलित एवं नारी विमर्श ने यथार्थनुभूति के स्तर पर उजागर करके वाल्मीकि से लेकर 1980 तक के साहित्य पर सवालिये निशान लगाये हैं।

दलित आलोचना का मार्ग प्रशस्त करने के लिए डॉ. धर्मवीर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समग्र हिन्दी आलोचना की पड़ताल करते हैं। ऐसे संक्रमणकालीन समय में अब तक की आलोचना का बौनापन साफ नजर आता है। या यों कहें कि कला एवं सौन्दर्य के नाम भाषित नजाकत के द्वारा नारियों एवं दलितों का ही शोषण किया है।[4]

हिन्दी में दलित साहित्य की चर्चा और उस पर उठे विवादों ने हिन्दी साहित्य को ही कटघरे में खड़ा कर दिया है। जहाँ एक ओर हिन्दी साहित्य के मठाधीश, समीक्षक, आलोचक, दलित साहित्य के अस्तितव को ही नकार रहे हैं, वही कुछ लोग यह सिद्ध करने का प्रयास भी कर रहे हैं कि दलित साहित्य के लिए दलित होना जरूरी नहीं है। उकना कहना है कि हिन्दी में दलित समस्याओं पर लिखनेवालों की एक लम्बी परम्परा है। ऐसी ही एक चर्चा के दौरान कथाकार काशीनाथ सिंह ने अपने एक अध्यक्षीय भाषण में टिप्पणी की थी, ''घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है।'' विद्वान कथाकार का यह तर्क किस सोच को उजागर करता है? घोड़े को देखकर उसके बाह्य अंगों, उसकी दुलकी चाल, उसके पुट्ठों, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिन–भर का थका–हारा, जब वह अस्तबल में भूखा–प्यासा खूँटे से बंधा होगा, तब अपे मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे, उसकी अन्तःपीड़ा क्या होगी, इसे आप कैसे समझ पाएँगे? मालिक का कौन–सा रूप और चेहरा उसकी कल्पना में होगा, इसे सिर्फ घोड़ा ही जानता है।[5]

ब्राह्मणवादी सत्ता–संस्कृति और ब्राह्मणेतर दार्शनिकी, वैचारिकी के उल्लेख्य, महत्व ओर विचार–विश्लेषण के उपरांत एक सोचनीय प्रश्न यह उठता है कि क्या इतिहास में कभी शूद्र सत्ता–संस्कृति की पगध्वनि ही नहीं बल्कि उसका वर्चस्व भी रहा है। इसके बारे में लगातार इतिहासकारों, दलित चिंतकों और विद्वानों ने कई प्रकार से शोध करने की कोशिश की है। रामायण के शम्बूक और महाभारत में एकलव्य का उदाहरण लगातार ऐसा अहसास कराते हैं कि निश्चित रूप से वैदिक संस्कृति के प्रतिरोधस्वरूप इतिहास में ऐसी युगाांतकारी परिघटनाएं हुई होंगी जिनका उल्लेख आमतौर पर या तो नहीं मिलता है और अगर मिलता भी है तो वह बहुत ही क्षीण रूप में। इसके अतिरिक्त ऐसे कई प्रश्न उठते हैं जब लगता है कि ब्राह्मण समुदाय को शूद्र समुदाय के बारे में इतने सख्त कानून बनाने पड़े होंगे जिससे उनकी हालत बुरी होती चली गई। क्या इतिहास में शूद्र कभी शक्तिशाली या वर्चस्व में मौजूद रहा है? क्या इसीलिए सख्त नियमों को बनाकर न केवल उन्हें सता से दूर किया गया बल्कि समाज से हमेशा के लिए बहिष्कृत कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें अमानवीयता की हद तक अछूत का दर्जा देकर गांव, शहर और नगरों में आने का प्रतिबंध लगा दिया। इन प्रश्नों पर अब सकारात्मक रूप से विचार होना चाहिए।''[6]

दलित साहित्य के सम्बन्ध में प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि दलित साहित्य केवल दलितों द्वारा लिखे साहित्य को क्यों कहा जाता है? प्रेमचंद या अमृतलाल नागर के लिखे साहित्य को दलित साहित्य क्यों नहीं माना जाता? इसका उत्तर यह है कि दलित साहित्य स्वानुभूति का साहित्य है, यह भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है। गैर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य सहानुभूति का साहितय होता है, वह स्वयं भुक्तभोगी नहीं बल्कि दलित की पीड़ा को देखकर अनुभव कर उसे लिखते हैं। श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि ''प्रेमचंद ने दलित चेतना की कई कहानियाँ लिखी हैं, सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम आदि लेकिन अन्तिम दौर की कहानी 'कफन' तक आते-आते वे गांधीवादी आदर्शों, सामन्तों मूल्यों, वर्णव्यवस्था के पक्षधर दिखाई पड़ते हैं।'' एक स्थान पर वे और कहते हैं- ''अमृतलाल नागर का उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल' हैं इसमें उन्हीं पुरानी परम्पराओं और मान्यताओं की गिरफ्त में फंसकर तमाम औपन्यासिक गुणों के बावजूद एक बनावटी तथ्य में वह बदल जाता है। यानी एक बाहरी व्यक्ति का दृष्टिकोण दूर से देखकर लिखा गया यथार्थ, जो दलितों के साथ एकाकार होने, संस्कारों को लड़ने और उनके साथ साधारणीकरण करने की स्थिति से रोकता है। फिर भी ऐसे गैर-दलित साहित्यकारों का हम स्वागत करते हैं जिन्होंने दलितों की समस्याओं पर लेखनी चलाई है।[7]

निष्कर्षहिन्दी दलित साहित्य में आलोचना अभी अपने प्रारम्भिक चरण में है। दलित समीक्षकों द्वारा समीक्षा का प्रारंभ तो पुस्तक समीक्षाओं से ही हुआ। इस तरह यह स्पष्ट है कि हिंदी दलित आलोचना को डॉ. माता प्रसाद ने एक नवीन दृष्टि है। इनकी आलोचना की दृष्टि अपनी है। माता प्रसाद भाषा की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध एवं समर्थ आलोचक हैं। हिंदी दलित आलोचना के सशक्त हस्ताक्षर की दृष्टि से माता प्रसाद को याद किया जाएगा।

संदर्भ-सूचीः

1. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, पांचवां संस्करण, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं. 66-67
2. हिंदी साहित्यकोश ज्ञानकोश, संपा. राधावल्लभ त्रिपाटी, जवरीमल्ल पारख, अवधेश प्रधान, अवधेश कुमार सिंह, अवधेश प्रसाद सिंह, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, 2019,पृ.सं. 518
3. आलोचना-समय और साहित्य, रमेश दवे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, पृ.सं. 38

4. हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श, संपा. डॉ. दिलीप मेहरा, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2011,भूमिका से
5. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. सं.–X
6. सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, सूरज बड़त्या, भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, दिल्ली, 2012, पृ.सं.–57–58
7. दलित साहित्य में प्रमुख विधाएँ, माताप्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. 5–6